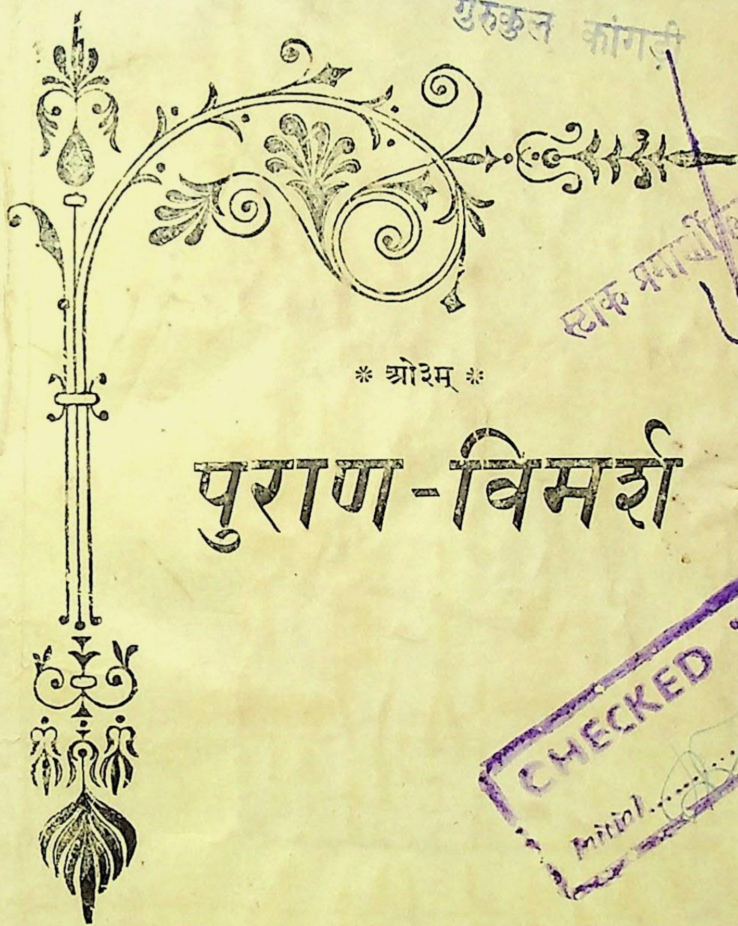

R
720
VID-P



* ओ३म् *

पुराण-विमर्श

विद्यासागर

ओ३म्

पुराण-विमर्श

लेखक

ब्रह्मचारी विद्यासागर
गुरुकुलीय साहित्य परिषद्



गुरुकुल यन्त्रालय काङ्गड़ी में
नन्दलाल के प्रबन्ध से मुद्रित तथा प्रकाशित ।

प्रथमावृत्ति) सम्वत् १९७२ (मूल्य =)
२०० प्रति)

भूमिका ।

१–मेरे पुराणों पर निबन्ध लिखने के मुख्यतया दो उद्देश्य हैं। एक तो उन भोलेभाले लोगों के लिये जो कि श्रद्धालु होते हुए अपने आप पुराणों को न पढ़ सकने के कारण औरों की बहकावट में फंसकर पौराणिक-धर्म की बातों में असीम श्रद्धा रखते हैं। दूसरे उन के लिये पुराणों को पढ़ने का सामर्थ्य रखते हुए भी श्रद्धातिशय के कारण मिश्रित दूध में से जल तथा दूध अलग नहीं कर सकते हैं। शेष रहे तीसरी तरह के आदमी, जो जानते बूझते भी उलटा कहते हैं, सो उन का तो कोई उपाय ही नहीं है क्योंकि कहा करते हैं कि "सोये हुए को तो हर कोई जगा सकता है पर मचले को कौन जगावे।"

२–यह निबन्ध केवल प्रारम्भिक यत्न ही समझना चाहिये, इस से अधिक कुछ नहीं, क्योंकि पूरा काम तो तभी हो सकता है जब कि सब पुराणों से प्रमाण इकट्ठे किये जावें।

३-अन्तिम निवेदन यह है कि यह निबन्ध वार्षिकोत्सव पर संस्कृत में लिखा गया था। अब शीघ्रता से अनुवाद करने के कारण कुछ भूलें रह गई होंगी जिन्हें मुझे पूरी आशा है कि पाठक स्वयं ठीक कर लेंगे। साथ ही मैं अपने सहाध्यायी ब्र० विनायकराव का अत्यन्त अनुगृहीत हूं कि जिन्होंने निबन्ध को संस्कृत से हिन्दी के अन्दर उल्था करने में मुझे बहुत कुछ सहायता दी है।

विद्यासागर

पुराण-विमर्श ।

ओ३म् सभापति महोदय तथा सभ्यगण !

आजकल भारतवर्ष में प्रायः सारे हिन्दू वेदों को प्रामाणिक मानते हैं तथा असीम श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं । परन्तु भाषा और भावों की कठिनता के कारण लोग उन्हें समझ नहीं सकते। साथ ही लोग धर्म के बड़े प्यासे हैं। उन की प्यास बुझाने के लिये भिन्न २ समयों में भिन्न २ सम्प्रदायों के प्रवर्त्तकों ने सामयिक भाषाओं में भिन्न २ पुस्तकें रचकर उन्हें वेद से दूसरे दर्जे पर प्रामाणिक ठहराया। परन्तु शोक की बात है कि उन के अनुयायिओं ने वेद से सर्वथा अनभिज्ञ होने के कारण अपनी २ गौण पुस्तकों को मुख्य मान लिया। ठीक यही हाल पुराणों के साथ हुआ है। पुराण बने तो इस लिये थे कि वे वैदिक बातों के समझाने में कुछ सहायक हों जैसा कि मैं आगे चल कर पुराण से ही दिखाऊंगा, परन्तु पीछे से हिन्दुओं ने उन्हीं को प्रत्यत्तर मानना प्रारम्भ कर दिया । यह बात सर्व-

साधारण हिन्दुओं ही में न थी। किन्तु मध्यम-काल के अच्छे से अच्छे पंडित भी श्रुति-स्मृति-इतिहास तथा पुराणों का एक समान ही प्रमाण देते रहे हैं। होते होते अब तो यह अवस्था आ पहुंची है कि वेदों को भूल जाने के कारण सर्वसाधारण हिन्दुओं में अधिकांश पुराण को ही प्रमाण मानते हैं। पहिले तो वेद तथा तर्क के अनुकूल न होने से पुराण को प्रमाण ही मानना चाहिये या नहीं—यही एक विचारणीय विषय है परन्तु हम आज के निबन्ध में इस विषय पर विचार नहीं करना चाहते हैं। मुझे तो केवल, यह दिखाना है कि पौराणिक लोग पुराणों को प्रामाणिक मानकर जो कुछ उन के अनुसार धर्म मानते हैं वह वस्तुतः पुराण प्रतिपादन नहीं करते हैं यदि करते भी हैं तो उस के विरुद्ध भी पुराणों में प्रमाण मिलते हैं। साथ ही संक्षेप से यह भी दिखाना चाहता हूं कि "पुराण" शब्द से आजतक क्या लिया जाता रहा है; उन का कर्त्ता कौन है तथा उन से लाभ और हानियां क्या हो सकती हैं। लगते हाथों यह भी कह देना चाहता हूं कि यदि सारे पुराणों में से प्रमाण दिए जाते तो बहुत अच्छा होता परन्तु समय की न्यूनता के कारण मैं सारे पुराण देख नहीं सका हूं। मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि कालान्तर में अवशिष्ट प्रमाण भी पाठकों के सन्मुख रक्खूं जिस

से वे लोग जो पुराणों को बड़े लम्बे चौड़े होने के कारण अपने आप न पढ़ कर उन के विषय में कुछ सम्मति बना लेते हैं—मेरे निबन्ध में दिये थोड़े से प्रमाणों को देखकर ठीक २ सम्मति बना सकें। मेरी तो यह इच्छा है कि अन्य भी सब बड़ी २ धार्मिक पुस्तकों का संक्षिप्त सार सर्वसाधारण के सन्मुख रखना चाहिये जिस से बहुत से मतभेद के दूर होने की आशा है। अस्तु। अब मैं प्रस्तावना छोड़ कर वास्तविक विषय पर आता हूं।

सभ्यगण! यद्यपि पुराण शब्द के वाच्यार्थ तथा उन के कर्त्ता के विषय में विचार करना हमारा मुख्य उद्देश्य नहीं है तथापि इस पर विचार करना आवश्यक है क्योंकि जबतक पुराणों के वाच्यार्थ तथा कर्त्ता का ही निर्णय नहीं तबतक उन की प्रमाणता या अप्रमाणता का निर्णय क्यों कर हो सकता है। चाहे अन्य किसी विषय में विवाद हो, पर पुराण शब्द के लक्षण के विषय में सारे सहमत हैं। क्या प्राचीन और क्या अर्वाचीन सभी विद्वान् पुराण का लक्षण यही करते हैं—

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति-स्थिति तथा प्रलय का वर्णन ही पुराणों का काम है। फिर यदि पुराण शब्द के वाच्यार्थ के विषय में विचार करें तो वेद शब्द की तरह इस में भी बड़ा मतभेद है। जिस प्रकार प्राचीन समय से आजतक वेद शब्द से कई मन्त्र भाग मात्र का, कई मंत्र सहित ब्राह्मणों का, तथा कई षडङ्ग सहित मन्त्रों तथा ब्राह्मणों का ग्रहण करते रहे हैं ; उसी प्रकार पुराण शब्द से पहिले पहिल एक ही पुराण लिया जाता था। फिर व्यास के कुछ देर बाद १८ पुराण माने जाने लगे। उस से भी कुछ देर बाद पुराण तथा उपपुराण भेद से ३६ पुराण माने जाने लगे। आजकल तो जैसा कि स्कंदपुराण की भूमिका से पता लगता है पुराण शब्द से ५४ पुराणों का ग्रहण होता है। सब से पहिले पुराण शब्द से एक ही पुराण का ग्रहण वेद, ब्राह्मण तथा सूत्रग्रन्थों में स्पष्ट प्रतीत होता है क्योंकि इन सब पुस्तकों में सब जगह पुराण शब्द का एक वचनान्त ही प्रयोग मिलता है जैसे:—

१—ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाः जज्ञिरे सर्वे दिविदेवा दिविश्रिताः॥

अथर्व ११, ७, २४।

दूसरा एक और मन्त्र अथर्व में आता है—

"इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ।" अथर्व—का० १५, अ० १, प्र० ६, मं० १२

२—शतपथ १३।४।३।१३ में लिखा है—

"अध्वर्य्यविंतिहवै होतरित्येवाध्वर्य्युस्तार्क्ष्यो वै पश्यतो राजेत्याह । तानुपदिशति पुराणं वेदः सोयमिति किंचित् पुराणमाचक्षीतेत्यादि ॥

फिर शतपथ ११ । ५ । ७ । ६ में लिखा है—

"य एवं विद्वान् वाकोवाक्य मितिहासः पुराण मित्यहरहः स्वाध्याय मधीते तएनं तृप्ता स्तर्पयन्ति सर्वैः कामैः सर्वैः भोगै रिति ॥

(३) पुराणों में भी कहीं कहीं एक ही पुराण का वर्णन आता है जैसे स्कंदपुराण में लिखा हैं—

"पुराणमेकमेवासीदस्मिन् कल्पान्तरेमुने ।"

परन्तु पुराणों में पुराण संख्या परस्पर विरुद्ध भी मिलती है। पद्मपुराण में पुराणों की संख्या ३६ बताई है। जैसे—

"यश्चसर्वपुराणानि षट्त्रिंशदिति कीर्त्तयेत्।
शृणोतिवानतस्यास्ति वित्तच्छेदः कथंचन॥"

परन्तु विष्णुपुराण में "अष्टादश पुराणानि पुराणज्ञाः प्रचक्षते" पद्य से पुराण संख्या १८ बताकर उन के नाम दिये हैं।

अच्छा चाहे कितने ही पुराण हों हमारा इस से कुछ नहीं बिगड़ता है परन्तु चूंकि सब पौराणिक लोग केवल १८ ही पुराणों का कर्त्ता व्यास को मानते हैं तथा उन्हीं को अधिक मान की दृष्टि से देखते हैं इस लिये उपपुराणों पर विचार करना हम उचित नहीं समझते।

(२) अब प्रसंगवश संक्षेप से इस बात की आलोचना करते हैं कि आया १८ पुराण व्यासकृत हैं वा नहीं? यद्यपि पौराणिक लोग १८ पुराणों का कर्त्ता व्यास को मानते हैं और पुराणों में भी जहां तहां

"अष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवती सुतः" इत्यादि वाक्यों के उल्लेख से पुराण व्यास जी के बनाए प्रतीत होते हैं परन्तु इस में हमारा मतभेद है। हम समझते हैं कि व्यास जी ने केवल एक ही पुराण बनाया था। शेष पुराण उन के शिष्यों के बनाए हुवे हैं। (१) यह बात विष्णुपुराण ३ अंश १० पृ० से स्पष्ट है। जैसे—

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थ–विशारदः॥
प्रख्यातो व्यास शिष्योभूत् सूतो वै लोमहर्षणः।
पुराण संहितां तस्मै ददौ व्यासो महामुनिः॥

अर्थात् पुराण नाम की एक पुस्तक बनाकर व्यास जी ने अपने रोमहर्षण नाम के शिष्य को दी। उस ने फिर सुमति अग्निवर्चा-शांतपायन-अकृतव्रण तथा सावर्णि नाम के अपने ६ शिष्यों को उसी पुराण में कुछ नए उपाख्यान जोड़कर सुनाया उन ६ शिष्यों ने फिर अपने शिष्यों को सुनाया।

इस प्रकार परम्परा से आख्यान और उपाख्यान मिलते २ एक पुराण वट के छोटे से बीज से विशाल वृक्ष के रूप में परिणत हो गया है।

२-श्रीमद्भागवत पुराण से भी पुराण व्यासकृत नहीं प्रतीत होते क्योंकि उस में सूत कहता है कि "इतिहास पुराणानां पिता मे रोमहर्षणः" अर्थात् बहुत से पुराणों के बनाने वाला मेरा पिता रोम-हर्षण है।

३-१८ पुराणों के व्यास-कृत न होने में तीसरी युक्ति यह है कि इन में परस्पर विरोध मिलता है। पागलों को छोड़कर साधारण मनुष्य भी परस्पर विरुद्ध नहीं कहते तो सर्वज्ञ समान व्यास जी कब परस्पर विरुद्ध लिख सकते हैं। यह बात स्पष्ट है कि एक पुराण जिस देवता की स्तुति करता है दूसरा उस की निन्दा करती है और दूसरा जिसकी स्तुति करता हैं तीसरा उस की निन्दा करता है।

जैसे भागवत में शिवके उपासकों की बड़ी निन्दा की है।

शिवव्रतधराश्चेच येच तान् समनुव्रताः।
पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्र परिपन्थिनः॥

इस के विरुद्ध पद्मपुराण में वैष्णवों की बड़ी निन्दा की है और शैवों की स्तुति की है। जैसे—

विष्णु-दर्शन मात्रेण शिव द्रोहः प्रजायते
शिव द्रोहान्न संदेहो नरकं यातिदारुणम्

इतने पर ही बस नहीं है किन्तु इसीपुराण में बहुत से पुराणों को तामस बताया है। जैसे—

मात्स्यं कौर्मंतथालैंगं शैवं स्कांदं तथैव च।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे॥

४—परस्पर विरोध के साथ पुराणों में अत्यन्त असम्भव गाथाओं-इतनी असम्भव कि जिनका आलंकारिक अर्थ भी कुछ नहीं बन सकता—का वर्णन है। दृष्टान्त के लिये गणेश की उत्पति के विषय में शिव पुराण ३२ अ. ज्ञानसंहिता में लिखा है कि—

"इयं विचार्य्य सादेवी करयोर्जलसंम्भवम्।
पंक मुत्सार्य्य तेनैव निर्ममे पुत्रकं शुभम्॥

अर्थात् पार्वती ने अपने हाथों की मैल से गणेश को उत्पन्न किया। इसी का पद्मपुराण में इस प्रकार वर्णन है कि—

कदाचित् गन्धतैलेन गात्र सभ्यज्य शैलजा ।
चूर्णैरुद्वर्त्तयामास मलेना पूरितंतनुम् ॥
तदुद्वर्त्तनकं गृह्य नरं चक्रे गजाननम् ।
पुरुषं क्रीडती देवी तं सात्क्षेपयदंभसि ॥

अर्थात् एक बार पार्वती ने उवटना मलते समय थोड़ा सा उवटन लेकर उस मे हाथी के मुखवाला १ मनुष्य बना दिया । यही बात वाराह पुराण में इस प्रकार आती है कि:—

ततः शशाप तं देवो गणेशं परमेश्वरः ।
कुमार, गजवक्त्रस्त्वं प्रलंब जठरस्तथा ॥

अर्थात् ब्रह्मा के हंसने से एक बड़ा सुन्दर बालक उत्पन्न हुआ । उसे जब पार्वती देखने लगी तो ब्रह्मा ने बालक को शाप दे दिया कि—"अरे बालक ! आज से तेरा मुख हाथी का और पेट भी बड़ा लम्बा हो जायगा ।" और वैसा ही हो गया ।

इस प्रकार ऐसी परस्पर विरुद्ध और असम्भव गाथाओं को व्यास जी जैसा विचारक नहीं लिख सकता है ; अतएव हमारा विचार है कि पुराण व्यास जी के बनाये नहीं ह ।

पुराणों से लाभ तथा हानियां ।

(३) पुराणों के स्वरूप और कर्त्ता का संक्षेप से निरूपण करने के बाद अब थोड़ा सा उन के लाभ तथा हानियों पर विचार करते हैं । "सर्गश्च प्रतिसर्गश्च" इत्यादि पुराण के लक्षण के अनुसार एक तो पहिले ही पुराणों में बहुत सा ज्ञान आ जाता है और उस पर फिर कई प्रक्षेपक महानुभावों ने लक्षणानुसार अनावश्यक विज्ञान भी इस में डालकर पुराणों को सब विद्याओं का भंडार बना दिया है ।

ऐसा कोई भी प्राचीन भारतीय विज्ञान नहीं है जिस का वर्त्तमान पुराणों में उल्लेख न हो । इतिहास, पदार्थ-विज्ञान, भूगोल, तथा ज्योतिष आदि में से कौन सा विज्ञान है जिस का पुराणों में वर्णन नहीं है ।

सभ्यगण ! सुनते हैं कि पहिले पहिल विश्वकोष फ्रांसदेश से बनना प्रारम्भ हुआ था । हम तो समझते हैं कि इस के यश का टीका भारतवर्ष के माथे पर ही लगना चाहिये क्योंकि भारतीयों का तो प्राचीन समय से पुराण नाम का विश्वकोष प्रसिद्ध ही है । महाशय ! प्राचीन होने के साथ पुराणों में एक और विशेषता भी

है। वह यह है कि आजकल योरुप में तो हर दस साल बाद नये विश्वकोष छपते हैं और इस बीच में जो भी नया ज्ञान पता लगाता है उसे छापते समय विश्वकोष में जोड़ देते हैं। इस से जहां उन का विश्वकोष हर समय पूर्ण रहता है वहां साथ ही उन लोगों की अल्पज्ञता भी साफ़ २ दीखती है। पर हमारे पुराण बनाने वालों ने तो ऐसा प्रबन्ध किया है कि उन में नया २ ज्ञान डालते हुए भी कुछ पता नहीं लगता है। उन्होंने १८ पुराणों के अन्दर भविष्य नाम का भी एक पुराण रचकर व्यास जी को उस का कर्त्ता मशहूर कर दिया। और उस के बाद जो भी कोई ऐतिहासिक घटना हुई अथवा जो कोई विज्ञान सम्बन्धी नई बात पता लगी तो उसे भावी बताकर भविष्य पुराण में डाल दिया। यदि आप भविष्यपुराण पढ़ें तो उस में आप को कबीर, नानक, तैमूरलंग तथा औरङ्गजेब आदि सब इतिहास प्रसिद्ध पुरुषों का जीवनचरित्र और उन के कार्य्य उस पुराण में मिलेंगे। अधिक क्या कहें कौशल्य नाम से पार्लियामेण्ट का वर्णन, भारत में अंग्रेज़ों का आगमन, उस के कारण तथा उन के भारतस्थ साम्राज्य का विनाश आदि बहुत ही समीप की घटनाओं तक का वर्णन मिलता है। यह सब देखते हुए भी भविष्यपुराण को

भूमिका लिखनेवाला कहता है कि यही तो व्यास जी की दूरदर्शिता है कि इतनी दूर तक की घटनाओं का भी उन्होंने पुराणों में उल्लेख कर दिया है। हमारी समझ में वह लेखक सचमुच ही अज्ञान का अवतार है जो कि पुराणों में प्रक्षेप की सम्भावना न कर के व्यास जी की दूरदर्शिता सिद्ध करता है ऐसे लोगों की बहकावट में आकर ही तो साधारण लोग भी पुराणों को व्यासकृत समझ कर उन का प्रत्यक्षर सच समझते हैं। इस प्रकार से पुराण एक ऐसा विश्वकोष है जो सैकड़ों वर्ष पुराना होते हुवे भी नया का नया ही दीखता है।

इस के यद्यपि बहुत से लाभ हो सकते हैं परन्तु यहां पर हम उन्हीं का उल्लेख करेंगे जो कुछ मुख्य प्रतीत होते हैं।

(१) ऐतिहासिक लाभ-सब से पहिले ऐतिहासिक दृष्टि से पुराण बड़े उपयोगी हैं। आजकल हमें भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के न मिलने का बड़ा शोक है। साधारणतया तो मुसलमानों के भारत पर आक्रमण करने से पूर्व का सारा ही इतिहास नहीं मिलता। परन्तु यदि मान भी लें कि बौद्धकाल का इतिहास बहुत कुछ

पाली भाषा की पुस्तकों से मिल सकता है तो भी उस से प्राचीन इतिहास तो पुराणों को छोड़ और कहीं से अच्छी प्रकार नहीं मिल सकता है । इसीलिये विलियम ज़ोन्स तथा रमेशचन्द्रदत्त आदि महाशयों ने जो कुछ भी प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में लिखा है उस में बहुत सा पुराणों—विशेषकर विष्णुपुराण की सहायता से ही लिखा है । महाभारत से पिछले इतिहास का तो कहना ही क्या है उस से पूर्व का भी सूर्य्य तथा चन्द्रवंशियों का क्रमबद्ध इतिहास पुराणों से मिल सकता है । वंश वर्णन तो पुराण के पांच लक्षणों में से एक लक्षण भी है । इसलिये प्राचीन इतिहास के लिये पुराणों का अनुशीलन करना बहुत ही आवश्यक है ।

वैज्ञानिक लाभ ।

दूसरा लाभ यह है कि प्राचीन विज्ञान के पुराणों में स्थान २ पर मिलने के कारण उस का भी पुराणों से ज्ञान हो सकता है (उदाहरण के लिये विष्णुपुराण के दूसरे अंश का ८ अध्याय पढ़ें तो वहा दिन रात के सम-विषम होने में सूर्य्य को कारण बताया है । जैसे—

त्रिष्वेतेष्वथ भुक्तेषु ततो वैषुवतीं गतिम् ।
प्रयाति सविता कुर्वन्नहोरात्रं ततः समम् ॥
ततोरात्रिः क्षयं याति वर्धतेऽनुदिनं दिनम्। इत्यादि

इसी प्रकार समुद्र के ज्वार भाटे का वर्णन मिलता है। यदि भूगोल देखना चाहें तो जम्बूद्वीप आदि सात द्वीपों के वर्णन के साथ २ सारा भूगोल सविस्तर मिलता है। इसलिये विज्ञान तथा भूगोल के कारण भी पुराणों का अध्ययन करना चाहिये।

३—तीसरा लाभ यह है कि पुराण संस्कृत साहित्य के समझने में बहुत ही उपयोगी हैं। गहन और सूक्ष्म विचार अलंकार प्रयोग किये बिना ठीक २ समझ में नहीं आ सकते हैं। इस लिये सूक्ष्म विचारों को स्थूल बनाना आवश्यक हो जाता है। इसी कारण से सर्व साधारण के हित के लिये पुराणों में अलंकारों का प्रयोग किया जाता है। साधारण मनुष्यों के सब स्थानों में होने के कारण प्रत्येक देश में कोई न कोई पुराण या (माई थोलोजी) का ग्रन्थ होता है। और कवि लोग उन अलंकारों को अपने काव्यों में काम में लाते हैं। इस प्रकार यद्यपि पुराणों में अलंकार प्रयोग सर्वसाधारण

को कठिन विचार समझाने के लिये किया गया था. और यद्यपि इस से कुछ लाभ भी हुआ है परन्तु शोक है कि लाभ के साथ २ हानि भी बहुत हुई है।

वे गंवार लोग जो और कुछ नहीं जानते आज भी इन पुराणों के अलंकार तो थोड़े बहुत जरूर जानते हैं। ऐसा कौन ग्रामीण होगा जिसने महाभारत या पुराण कभी न सुने हों। ऐसा कौन होगा जिसे यह पता न हो कि लक्ष्मी उल्लू पर सवारी करती है या सूर्य्य के रथ में सात घोड़े लगते हैं। अब यद्यपि इन कल्पनाओं में रत्ती-भर भी अशुद्धि नहीं है परन्तु साधारण लोगों में शिक्षा न होने के कारण सारा का सारा ज्ञान अज्ञान में परिणत हो गया है। सीधी बात है कि प्रायः संसार में लोग धनी होने पर उन्मत्त और मूर्ख हो जाते हैं। और पक्षियों में उल्लू भी बड़ा मूर्ख समझा जाता है। इस प्रकार मूर्खत्व समानता से पौराणिकों ने उल्लू को लक्ष्मी का वाहन माना था परन्तु आज इसी सचाई को बार २ समझाने पर भी ग्रामीण लोग नहीं समझते। इसीप्रकार से सूर्य्य के सात अश्वों की कल्पना भी अशुद्ध नहीं है। जिस ने थोड़ी सी भी पदार्थविद्या पढ़ी है वह जानता है कि प्रकाश की किरणें सात रंगों से मिलकर बनती हैं।

और क्योंकि प्रति सैकंड १ लाख २६ हज़ार चलने के कारण आशुगामी भी हैं इस लिये किरणों को अश्व कह-कर सप्ताश्व की कल्पना सर्वथा ठीक है। परन्तु इसी बात को ग्रामीण लोग नहीं समझते। बिचारे साधारण लोगों का तो कहना ही क्या है जब कि अच्छे २ विद्वान भी इन्हीं पौराणिक अलंकारों के कारण अज्ञान में पड़ चुके हैं। योगदर्शन तथा वेदान्त में भी एक स्थान पर सर्वतन्त्र स्वतन्त्र वाचस्पति मिश्र लिखते हैं "अचिन्त्यसामर्थ्यातिशयो हि समाधिः को हि योगप्रभावा-द्दते अगस्त्य इव समुद्रं पिवति स इव च दण्डकारण्यं सृजती-ति"। अर्थात् समाधि में बड़ा सामर्थ्य है। योग के प्रभाव से ही तो अगस्त्य ऋषि ने सारा समुद्र पी डाला था और दण्डकारण्य बना दिया था। प्रायः पौराणिक यही सम-झते हैं। पर हमारी समझ में इस कल्पना का कुछ और आशय है। यह साधारण सी बात है कि शरद-ऋतु में नदियों तथा समुद्र का जल सूकने लगता है। और अक-स्मात् या किसी कारण से अगस्त्य नक्षत्र भी उन्ही दिनों आकाश में निकलना प्रारम्भ होता है। इस लिये हम समझते हैं केवल अगस्त्य नक्षत्र का शरद् ऋतु के आ-रम्भ में उदय होना बताने के लिये ही इस अलंकार का

प्रयोग किया है। हम यहां केवल दो हा दृष्टान्त देते हैं परन्तु इस प्रकार के बीसों और भी दृष्टान्त दिए जा सकते हैं जिन से साफ़ पता लगता है कि पुराणों के अलंकारों के कारण हमारे देश में बहुत ही अज्ञान फैला है।

अस्तु। सभ्यगण! इस प्रकार हमने ऊपर थोड़े से पुराण पढ़ने के लाभ बताये हैं। इस से यह कदापि न समझना चाहिये कि पुराण सब को सब अवस्थाओं में पढ़ने चाहियें। इस का उत्तर सापेक्ष है। जो लोग जितेन्द्रिय तथा विद्वान् हैं वे भले ही पुराणों को पढ़ें उन के तो पुराण लाभ के ही हैं; परन्तु जो लोग बालमति वाले तथा अस्थिर-चित्त वाले हैं उन्हें पुराण कभी न पढ़ने चाहिएं। इस का कारण पुराणों की अश्लीलता ही है शायद ही कोई पंडित होगा जो पुराणों की अश्लीलता का परिहार कर सके। बताइये तो ऐसा कौनसा ऋषि है जिस पर पौराणिकों ने कोई न कोई दोष नहीं लगाया है। क्या व्यास, क्या वसिष्ठ और क्या विश्वामित्र, जो भी कोई ऋषि पुराण लेखकों के हाथ चढ़ा उन्हों ने रगड़ मारा।

श्रीकृष्ण भगवान् के साथ तो पौराणिकों की कोई

विशेष ही शत्रुता लगती है क्योंकि ऐसा कोई भी दोष न बचा होगा जो पौराणिकों ने उन के सिर न मढ़ा हो। जहां एक ओर गीता के कर्त्ता के रूप में हम कृष्ण भगवान् को पाते हैं वहां दूसरी ओर से उनका १६ हज़ार स्त्रियां रखना तथा गोपियों के वस्त्रों का चुराना किसी भी बुद्धिमान् के दिमाग में नहीं आसकता है। अथवा श्री कृष्ण को क्या कहें इन लोगों ने तो देवता माने हुए चन्द्र आदि नक्षत्रों पर भी दुराचार का दोष लगा डाला है। उदाहरण के लिये बृहस्पति की तारा नाम की पत्नी के साथ चन्द्रमा का व्यभिचार बताया है। जैसे देवी भागवत में कहा हैं—

"कामा तुर स्तदा जातः शशी शशिमुखींप्रति।
सापिवीक्ष्यविधुं कामं जातामदन पीड़िता।। इत्यादि

इस प्रकार एक ही स्थान पर नहीं किन्तु अनेक स्थानों पर पुराणों में रद्दी से रद्दी गंद भरा हुआ है। यही कारण है कि परमपूज्य दयानन्द ने पुराणों को विष से मिले हुए अन्न की तरह त्याज्य बताया है (शोक है कि संसार में ईश्वर की अपार महिमा को जताने वाले चंद्रादि नक्षत्रों में भी दुराचार का दोष थोपते हुए पुराण के लेखकों को लज्जा न आई।

सज्जनो:—

यहां तक मैंने आपके सामने पुराण, पुराण के कर्त्ता, और पुराण के बहुत से अवान्तर लाभों के विषय में जो कुछ मेरे अपने विचार थे वे प्रकट करदिये। अब मैं इस बात का निवेदन करना चाहता हूं कि पुराण कर्त्ताओं ने पुराण किस प्रयोजन को सामने रख कर बनाये। इस को पता लगा ने के लिये कहीं इधर उधर भटकने की अथवा गहरी खोजों के करने की आवश्यकता नहीं है। इस का अत्यन्त सादा किन्तु अत्यन्त स्पष्ट उत्तर पुराणों से ही मिल जाता है। जैसे कि देवी भागवत में लिखा है:—

स्त्री शूद्र द्विज बन्धूनां न वेद श्रवणं मतम्
तेषा मेव हितार्थाय पुराणानिकृतानि च ॥

अर्थात् पुराण की साधारण सम्मति के अनुसार स्त्री शूद्र और व्रात्यों के लिये वेदों का पढ़ना पढ़ाना वर्जित है अतएव यह सीधो ही बात है कि वे धर्म के गूढ़ तत्वों से अनभिज्ञ रहेंगें। उन को धर्म के तत्वों का पता लगे और वे धर्म के श्रेष्ठ मार्ग पर चल सकें केवल इसी लिये पुराण कर्त्ताओं ने पुराणों का निर्माण किया।

यह उन का विचार उत्तम था और प्रयोजन भी उत्तम था किन्तु इस का आधार एक ऐसी असत्यता पर रखा गया था जिस के कारण से कि भारत में बड़े २ विषम परिणाम उपस्थित हुवे। वह असत्यता क्या थी ? केवल यही कि स्त्री शूद्र और व्रात्यों को वेदों के पढ़ने पढ़ाने और वैदिक शिक्षाओं का सुनने का भी अधिकार नहीं था। कितनी कठोर बात है पुराण कहता है कि न वेद श्रवणंमतम्" अर्थात् वे वेदों को सुन भी नहीं सकते। यह एक बात है जो पुराणों को बनानेके लिये आधारशिलामें रखी गई थी और जो कि स्वतः वेद वाक्यों से सिद्ध करने की ज़रूरत नहीं कि वेद में स्त्री शूद्रों को भी वैदिक शिक्षाओं को देने के लिये प्रबल अज्ञायें दी गईं। क्योंकि यह विषयान्तर हो जायगा। किंतु मैं थोड़े से में इस बातको बताने के लिये श्रोताओं का उस मन्त्र की ओर अवश्य ध्यान खैंचना चाहता हूं जिसको कि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि—

"यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय चस्वाय चारणाय॥

इस मन्त्र से स्पष्ट मालूम हो जाता है कि स्त्री शूद्रों

को भी वेदों का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना लाज़ि. है। पुराण कर्त्ताओं ने इस मन्त्र को भुला दिया और इस का बड़ा बुरा परिणाम हुआ। यह बात तो ठीक थी कि स्त्री शूद्र और व्रात्य वैदिक मन्त्रों को नहीं समझ सकते अ-थवा कठिनता से समझ सकते हैं इस लिए उन को धर्म का मार्ग पुराणों अथवा अन्य किन्हीं ग्रंथों द्वारा दिखाना चाहिए था। किन्तु हुआ क्या? जहां इन के लिए वेद के मन्त्रों और उन के अभिप्रायों का सुनना सुनाना छूट गया वहां वेदों का समस्त स्थान पुराण ही ले बैठे। और क्योंकि धर्म के विषय में उन का सदा पुराणों से ही वा-स्ता पड़ता-रहा अतः उन्हों ने वेदों को बिलकुल छोड़ दिया और पुराणों को ही इस विषय में स्वतः प्रमाण मानने लगे। यह लहर यदि यहीं रुक जाती तो भला होता किन्तु ऐसा हो कब सकता था। चली हुई लहर का रुकना तो वैसे ही कठिन होता है फिर जब वह मनुष्य को आराम देने वाली हो तो कैसे रुक सकती है। अब तो वेदों के कठोर पहाड़ों को खोदे बिना ही मनुष्यों को पुराण के नरम २ रेतीले मैदानों में जल मिलने लग गया फिर क्या था किसी ने आव देखा न ताव भारत के बड़े बड़े विद्वानों ने भी अपने डेरे डण्डे इन्हीं स्रोतों के किनारे लगा दिए। स्वामी शङ्कराचार्य और वाचस्पति मिश्र के

समान धुरन्धर पंडित भी वेदों और पुराणों में सर्वथा अविरोध को मानने लगे। और आज तक ये लोग ऐसा ही मानते चले आते हैं। बहुत क्या कहें ये तो इतना भी नहीं मानते कि पुराणों में आपस में भी विरोध है अन्धा धुन्ध भेड़ चाल की न्याईं चलते जा रहे हैं। इन की इन सब बातों को देख कर तो हम यहां तक कहने को बाधित हो गये हैं ये लोग कभी पुराणों को खोल ध्यान पूर्वक पढ़ते भी नहीं हैं और पुराणों के बड़े २ पोथों को देख कर ही मान जाते हैं कि ये ज़रूर स्वतः प्रमाण हो सकते हैं। नहीं तो ऐसी घपड़-चौथ कभी न मचती।

क्या पुराण स्वतः प्रमाण है —

मैं पहिले ही दिखा चुका हूं कि पुराणों में बहुत सी बातें एक दूसरे से विरुद्ध हैं। हमें ज़रूरत नहीं कि हम सिद्ध करते फिरें कि पुराण स्वतः प्रमाण नहीं है। ये पुराणों की आपस की विरुद्ध बातें ही स्वतः सिद्ध कर देती हैं कि एक पुराण दूसरे पुराण को प्रमाण नहीं मानता है। अस्तु मैं इस प्रकार की युक्तियों से इन की स्वतः प्रमाणता के खंडन में बहुत देर नहीं लगाना चाहता।

क्योंकि मेरा यह लक्ष्य है कि मैं दिखाऊं कि स्वयं पुराण इस विषय में क्या सम्मति देते हैं।

देखिए पुराण अपने स्वतः प्रमाण होने का स्वयं खंडन करते हैं:—

सर्वथा वेद एवासौ धर्म-मार्ग प्रवर्तकः
तेनाऽविरुद्धं यत्किञ्चित्तत्प्रमाणं नचान्यथा॥१

पुराणेषु क्वचिच्चैवं तन्त्रदृष्टं यथातथम्
धर्मं विदन्तितं धर्मं गृह्णीयान्न कथंचन॥२
देवी भागवत

अर्थात मनुष्यों को धर्म-मार्ग में प्रवृत्त कराने वाले वेद ही हैं। जो ग्रन्थ उन से विरुद्ध नहीं हैं वे तो प्रमाण हैं और अन्यथा कहा गया सब का सब अप्रमाण है इतना ही नहीं किन्तु पुराण कर्त्ता अपने भाव को दूसरे श्लोक में और भी अधिक स्पष्ट करता है उस का आशय यह है कि पुराणों में सूत्र स्मृति आदि ग्रन्थों की कुछ एक देखा दिखाई बातें लिख दीं गईं हैं और वह धर्म भी समझी जाती हैं किन्तु धर्म-मार्ग पर चलने वाला पुरुष उन को

कभी स्वीकार न करे। यहां तो सूत्र और स्मृतिग्रंथों की भी सुनाई नहीं होती फिर इन बेचारे पुराणों को कौन पूछने वाला रहा। पुराणों की स्वतः प्रमाणता तो दूर रही पर यहां तो प्रमाणता भी कठिनता से हाथ लगी है सो ही बस है।

सज्जनो:—

आंखें मूंदे रखने से तो दिन दहाड़े भी वस्तुएं नहीं दीखती हैं तो फिर ये पौराणिक पुराणों को बिना पढ़े ही कैसे पुराणों की अप्रामाणिकता सिद्ध मान लें। मेरा तो उन सज्जनों से सविनय निवेदन है कि वे ज़रा अधिक ध्यान पूर्वक पुराणों को पढ़ें उन्हें स्वयं मालूम हो जावेगा कि पुराण अपने आप को स्वतः प्रमाण बतलाता है कि नहीं।

अस्तु। पुराणों को किसी प्रकार का भी प्रमाण माना जाय वा न माना जाय इस बात को यहीं छोड़ कर अब मैं यह दर्शाना चाहता हूं कि क्या वर्तमान पुराणों में वही बातें लिखी हैं जिन को कि हिन्दू लोग मानते हैं अथवा इस से विरुद्ध बातें भी लिखी हुई हैं। जिन दो तीन पुराणों को मैंने देखा है उन के आधार पर मैं घोषित कर सकता हूं कि पुराणों में हिंदुओं की मानी

हुई बातों का जिन को कि वे पुराणों के ही आधार पर मानते हैं कई स्थानों पर खंडन किया हुआ हैं। इस में सब से पूर्व हम वर्ण-व्यवस्था को ही लेते हैं।

(१) क्या पुराणों में वर्णव्यवस्था जन्मानुसार ही है:—

वर्तमान समय में वर्णव्यस्था को कायम करने के लिए दो पक्ष हैं एक तो पौराणिकों का और दूसरा सुधारकों का। पहिले पक्ष वाले कहते हैं कि वर्ण-व्यवस्था जन्मानुसार होती है और दूसरों का पक्ष है कि गुण-कर्मानुसार। दोनों अपने पक्षों में युक्तियें भी देते हैं और प्रमाण भी। युक्तियों से तो यहां कुछ मतलब नहीं। केवल प्रमाणों में भी अन्य ग्रंथों के प्रमाणों से कुछ मतलब नहीं केवल पुराणों के प्रमाणों से ही मतलब है। पहिले पक्ष का आधार बहुत कुछ पुराणों पर ही है किंतु इस का यह मतलब नहीं कि पुराणों में दूसरे पक्ष के प्रमाण हा नहीं हैं। हैं और उनमें से मुख्य २ पुराणों के प्रमाण हम यहां भी उद्धृत करेंगे—

ब्रह्म पुराण के २२३ वें अध्याय में मुनियों ने शिव से पूछा है कि

"कर्मणाकेन वर्णानामधमाजायते गतिः
उत्तमा च भवेत् केन ब्रूहि तेषां महामते ॥ १॥

शूद्रस्तु कर्मणाकेन ब्राह्मणत्वं च गच्छति
श्रोतु मिच्छामहे केन ब्राह्मणः शूद्रतामियात् ॥२॥

अर्थात् वे कौन से कर्म हैं जिन से वर्ण ऊंचे और नीचे कहलाते हैं, महाराज शिव हमें बताओ किन कर्मों से शूद्र ब्राह्मण हो जाता है और ब्राह्मण शूद्र बन जाता है।

उस समय शिव ने उन्हें निम्न-लिखित उत्तर दिया

कर्मणा दुष्कृतेनेह स्थानाद्भ्रश्यति स द्विजः
श्रेष्ठं वर्णमनुप्राप्य तस्मादाक्षिप्यते पुनः ॥
स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति
क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा ब्रह्मभूयं स गच्छति ॥
यश्च विप्रत्वमुत्सृज्य क्षत्र धर्मं निषेवते
ब्राह्मण्यात्स परिभ्रष्टः क्षत्रयोनौ प्रजायते ॥
वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभ मोहव्यपाश्रयः

ब्राह्मण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्यल्पमतिः सदा ॥
सद्विजो वैश्यतामेति वैश्यो वा शूद्रतामियात्
स्वधर्मात्प्रच्युतो विप्रस्ततः शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥
तत्रासौ निरयं प्राप्तो वर्ण भ्रष्टो बहिष्कृतः
ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्टः शूद्र योनौ प्रजायते ॥
एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा
शूद्रो ब्राह्मणतां गच्छेद्वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत् ॥

अर्थात् "ऊंचे वर्ण को प्राप्त हो कर द्विज कहाने वाला पुरुष भी जब खराब काम करने लगता है तो अपने स्थान से गिर जाता है इस के विपरीत चाहे वह क्षत्रिय हो चाहे वैश्य यदि ब्राह्मणों के से कर्म करने लग जावेगा तो वह भी ब्राह्मण ही कहलाने लगेगा इसी प्रकार से जो ब्राह्मण अपने कर्मों को छोड़ कर क्षत्रिय के अथवा वैश्य के कर्म करता है वह अपने वर्ण से गिर जाता है और या तो क्षत्रिय कहलाता है या वैश्य"। आज कल के निरक्षर भट्टाचार्य ब्राह्मण बड़े चढ़ बढ़ रहे हैं और भोले भाले लोग भी उन्हें वैसा ही मानते चले जाते हैं पर ज़रा इधर ध्यान से देखिए पुराण क्या कहता है। वह कहता है कि "इस प्रकार के लोभ और मोह के का-

रण से वर्ण भ्रष्ट हुवे २ पतित गिरे हुवे ब्राह्मण यह नहीं कि वैश्य पदवी तक ही पहुंचे कितुं गिरते २ वह शूद्र योनि तक चले जाते हैं "पुराण में लिखा है कि" शूद्र योनौ प्रजायते " इतने पर भी पता नही लगता कि ये भोले भाले लोग इन निरक्षरों के पीछे क्यों पड़ रहते हैं। शायद कोई समझे कि "शूद्र योनौ प्रजायते" का मतलब यह है कि वह अगले जन्म में शूद्र होजाता है। कितुं भाइयो। इस का एसा मतलब नहीं है। यदि आपको शङ्का नहीं छोड़ती तो जरासा आगे चलिये सारा भेद खुल जावेगा। उसी पुराण के उसी प्रकरण में आगे लिखा है कि:—

एतैः कर्मफलैर्देवि न्यूनजाति कुलोद्भवः
शूद्रो ऽप्यागमसंपन्नो द्विजो भवति संस्कृतः
ब्राह्मणो वा ऽप्यसद्वृत्तः सर्वसंकर भोजनः
स ब्राह्मण्यं समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः
कर्मभिः शुचिभिर्देवि शुद्धात्माविजितेन्द्रियः
शूद्रो ऽपि द्विजवत्सेव्यइति ब्रह्माऽब्रवीत्स्वयम् ॥
न योनिर्ना ऽपि संस्कारो न श्रुतिर्न च संततिः
कारणानि द्विजत्वस्यवृत्तमेव तु कारणम् ॥

सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते
वृत्तो स्थितश्च शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं च गच्छति ॥

अर्थात् " हे देवि ! इन सब कर्मों के कारण से न्यून जाति में भी उत्पन्न हुवा २ शूद्र यदि वेद विद्या को पढ़ले तो वह शुद्ध ब्राह्मण बनजाता है। इसी प्रकार ब्राह्मण के धरमें उत्पन्न हुवा भी पुरुष यदि वह निषिद्ध भोजनों अर्थात् मद्य मांसादि को खाता है तो वह गिरा हुवा और शूद्र कहलाने के लायक है ,,। इतना ही नही किन्तु ऐसा मालूम होता है कि इस पुराण कर्त्ता से निरपराध शूद्रों पर अत्याचार सहा नहीं गया वह फिर लिखता है कि "यदि शूद्र शुद्ध और विजतेन्द्रिय होतो उसकी वैसी ही सेवा करनी चाहिये जैसी कि एक ब्राह्मण की की जाती है" इस के बाद वही पुराण कर्त्ता अपने भाव को और भी अधिक स्पष्ट करता है शायद जितनी स्पष्टता से उसने गुण कर्म से वर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन किया है इतना स्पष्ट किसी और ने नहीं किया होगा वह कहता है कि " मनुष्य को ब्राह्मण बनाने के लिये उस की योनि कारण नही हैं और न संस्कार भी कारण है और नाही किसी के बाल बच्चों के ब्राह्मण होजाने पर ही वह ब्राह्मण होजाता है इतना ही नही किन्तु पुराण और अधिक कहते हैं कि यह

भी कोई ज़रूरी नहीं कि जिस ने चारों वेद पढ़ लिए हों वह ब्राह्मण ही कहलाए" अब प्रश्न उठता है कि फिर ब्राह्मण कहलाने के लिए क्या आवश्यक है तब पुराणस्वतः उतर देते हैं कि "............"द्विजत्वस्य बृत्तमेवतु कारणम्"

"अर्थात् ब्राह्मण बनने के लिए केवल उस का वृत्त अर्थात् चरित्र अर्थात् उस के काम ही कारण हैं। यह सारा वर्णन पुराणों का हैं परंतु जिन्हों ने आंखें मूंद कर अथवा पुराणों को बंद कर के पुराणों को देखना हों उन्हें इन बातों का कैसे पता लग सकता है। पुराण ने यहीं नहीं छोडा प्रत्युत उस ने एक उदाहरण भी दे मारा कि देखो प्राचीन समय में क्षत्रिय का पुत्र धर्मात्मा विश्वामित्र ब्रह्मर्षियों के काम करता २ ब्रह्मर्षि बन गया। यहां मुझे विश्वामित्र की कथा को लिखने का कोई प्रयोंजन नहीं है। क्योंकि इसे प्रायः आप सभी जानते होंगे मैं यहां केवल उस श्लोक का ही उद्धहरण दे देता हूं जिस में कि यह लिखा गया है।

प्राप्य ब्रह्मर्षिसमतां योऽयं ब्रह्मर्षितां गतः
विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथःस्मृतः

(२) उपरोक्त सब ब्रह्मपुराण की कथा होचुकी अब औरों

की बातें सुनिये । देवी भागवत के तृतीय स्कन्ध के दसवें अध्याय में यों लिखा है

यथा शूद्रस्तथा मूर्खो ब्राह्मणो नात्र संशयः
न पूजार्हो न दानार्हो निंद्यश्च सर्व कर्मसु ॥

देशे चैव समानश्च ब्राह्मणो वेदवर्जितः
करदः शूद्रवच्चैव रुन्तव्यः स च भूभुजा ॥

राज्ञा शूद्रसमो ज्ञेयो न योज्यः सर्व कर्मसु
कर्षकस्तु द्विजः कार्यो ब्राह्मणो वेद वर्जितः॥

इसी पुराण के नवम स्कन्ध में लिखा है धर्मराज उवाच ॥

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते
सुखं दुःखं भयं शोकः कर्मणैव प्रणीयते॥

कर्मणाऽथ मुनीन्द्रत्वं तपस्वित्वं स्वकर्मणा ॥
स्वकर्मणा क्षत्रियत्वं वैश्यत्वं च स्वकर्मणा॥

इन श्लोकों में पुराण कर्त्ता ने बताया है कि आज कल के अनपढ़ और कर्म रहित ब्राह्मणों के साथ क्या व्यवहार करना चाहिए वह कहता है कि "हे मनुष्यो! मूर्ख ब्राह्मण ठीक वैसा ही है जैसा कि एक शूद्र होता है उस की कभी पूजा न करो और उसे कभी दान न दो" इस के साथ ही पुराण कर्त्ता ने राजा को इस विषय में उपदेश दिया है कि 'ऐसे मूर्ख ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुवे मूर्ख को राजा शूद्र के समान समझे और उस को ऋत्विगादि के कर्मों में न लगा कर कृषि कर्म में लगा देवे" यह कैसा सुन्दर उपदेश है और वर्ण-व्यवस्था को कितना अधिक स्पष्ट करता है। पुराण के ऐसे उपदेशों को सुन कर कौन कह सकता है कि पुराण में गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था नहीं मानी गई। इस के बाद अगले दो श्लोकों का आशय यह है कि "मनुष्य अपने कर्मों के कारण से ही संसार में उत्पन्न होता है अपने कर्मों के कारण से ही मर जाता है वह अपने कर्मों के कारण से ही सुखी और दुःखी होता है और अपने कर्मों के कारण से मुनि और तपस्वी बन जाता है और इसी प्रकार से वह अपने ही कर्मों के कारण क्षत्रिय वैश्यादि वर्णों को पाता है।"

इन उपरोक्त पुराणों के समान भविष्य पुराण भी इसी बात की साक्षी देता है कि वर्ण व्यवस्था गुण कर्मानुसार होती है उस के २४ वें अध्याय में राजा शतानीक ने सुमन्तु से पूछा है कि मनुष्य कैसे ब्राह्मण हो सकता है उस समय शतानीक ने जवाब दिया कि "पुराने ज़माने में ऋषि लोगों ने भी ब्रह्मा से यह प्रश्न किया था कि जाति, अध्ययन, देह, आत्मसंस्कार, और आचार में से कौन सी बात मनुष्य को ब्राह्मण बनाती है। उस समय ब्रह्मा ने निम्न-लिखित उत्तर दिया और ठीक भी है।

"शस्त्रादिभङ्गार्गवजातियुक्तो
गजाश्वगौओष्ट्रखराद्विकानाम्
ग्रत्यया कृतो ह्यगंक वर्ण धर्मै
भेदः स्फुटं लक्षणतो ऽन्वयद्वत्
सांकेतिकं सुकृतलोप विशेष लब्धं
वाणिज्य भैषज कृलासिब जाति भेदाः"

अर्थात् ब्रह्मा जी कहते हैं कि "जैसे गौ और घोड़े में उन के अङ्गों के कारण से भेद होता है ब्राह्मण और शूद्र में ऐसा कोई भेद नहीं। ये भेद केवल सांकेतिक अर्थात् कृत्रिम अथवा उन के कार्यों के अनुसार किए गये

है जैसे कि एक वैद्य और बनिए में किया जाता है।"
इसी बात के लिए वे मनु का भी प्रमाण देते है।

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च।
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी॥१॥
गोरक्षकान् वाणिजकांस्तथा कारुकुशीलवान्।
प्रेष्यान् वार्धुषिकांश्चैव शूद्रांस्तान् मनुरब्रवीत्॥२॥
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मण श्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियो याति विप्रत्वं विद्याद्वैश्यं तथैव च॥३॥

अर्थात् "यदि कोई ब्राह्मण अपनी पेट पूजा के लिए मांस, लशुन या लवण इत्यादि चीज़ें वेचे तो वह उसी समय पतित हो जाता है और तीन दिन तक दूध बेचते रहने से भी पतित हो जाता है इसीलिए मनु जी कहते हैं कि वे द्विज शूद्र हैं जो कि गोपाल बनिए तथा कारीगरों के काम करते हैं और व्याज लेते हैं।" ये हैं पुराण के वचन। जो कि ब्राह्मण के लि दूध वेच कर अपने निर्वाह करने के लिए भी बंद करते हैं। किन्तु आज क्या हालत हो रही है वर्त्तमान समय में ब्राह्मण लोग श्राद्धों के लड्डू पेडे और चौत्रों की रोटियां लेकर, केवल निर्वाह के लिए नहीं किन्तु रुपया जोड़ने के लिए

बेचते हुवे देखे गये हैं। इतने पर भी उन्हें कोई भी ब्रा-ह्मण पदवी से गिराने वाला नहीं और भोले लोग उन गिरे हुवे शूद्र समान ब्राह्मण को वैसे ही दान देते चले जाते हैं। अस्तु इस के बाद कहते हैं कि केवल वेदाध्ययन मात्र से भी कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता वे कहते हैं कि:—

विप्रवद्वैश्य राजन्यौ राक्षसा रावणादयः
श्वाद चांण्डाल दासाश्च लुब्धकाभीरधीवराः
येऽन्ये ऽपिवृषलाः केचित् तेऽपिवेदानधीयते॥२॥

आचार हीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः
सह षड्भिरङ्गैः
शिल्पं हिवेदाध्ययनं द्विजानां वृत्तं स्मृतं ब्राह्म-
ण लक्षणंतु ॥ ३

वे कहते हैं कि 'केवल वेद पढ़ लेने से कोई ब्राह्मण नहीं बन सकता। वेदों को तो एक ब्राह्मण के समान क्षत्रिय और वैश्य भी पढ़ लेते हैं नहीं २ इतना ही नहीं किन्तु उन्हें रावणादि जैसे राक्षस और अन्य चांडाल आदि नीच जातिएं भी पढ़ लेती है।' फिर यदि वेदों के

पढ़ने मात्र से मनुष्य ब्राह्मण बन जाता तो ये सब ब्राह्मण क्यों नहीं बन गए तब जवाब देते हैं कि भाई ! जो आचार से गिर गया जो दुराचार में फंस गया इसे वेद पवित्र तो नहीं कर सकते। वेदों का पढ़ लेना तो एक ऐसा ही कार्य्य है जैसा कि नटादियों का नाचना होता है। वह तो तभी पवित्र हो सकेगा जब वेदों में लिखे अनुसार वह आचरण करेगा। इसी लिए तो कहते हैं कि ब्राह्मणता का लक्षण केवल वृत्त अर्थात् आचार ही है।

यदि वंश में नहीं जाति में नहीं, वेदाध्ययन में नहीं, तो प्रश्न होता है क्या ब्राह्मणता शरीर में रहती है ? तो कहते हैं कि नहीं वहां भी नहीं रहती। वे कहते हैं।

देहस्य ब्राह्मणत्वं यैरतत्वज्ञैः प्रकल्प्यते
संस्कृताणां शरीरस्य न तेषां ब्रह्मता भवेत् ॥

मृग्यमाणे प्रयत्नेन देहे तन्नो पलभ्यते
तस्मान्न देहे ब्राह्मण्यं ना ऽपि देहात्मकं भवेत् ॥

कहते हैं कि ब्राह्मणत्व देह में नहीं रहता। क्यों ? क्योंकि जब मनुष्य मर जाता है और शरीर वैसा ही

रहता है तो कितना ही ढूंढो वह ब्राह्मणत्व नहीं मिलता इस से पता लगा कि ब्राह्मणत्व देह में भी नहीं रहता। फिर वे स्वयं शंका उठाते हैं कि क्या वे मनुष्य ब्राह्मण कहावें जिन के गर्भाधानादि सोलह संस्कार हो चुके हों। तब कहते हैं कि—

आचार मनुतिष्ठन्तो व्यासादि मुनि सत्तमाः
गर्भाधानादिसंस्कार कलापरहिता स्फुटम्॥ १॥

जातो व्यासस्तु कैवर्त्यां श्वपाक्याश्चपराशरः।
शृगिजोऽथ ऋष्यशृंगोऽपि वसिष्ठो गणिकात्मजः॥२॥

मंदपालमुनि श्रेष्ठो नाविकापत्य मुच्यते।
बहवोऽन्येऽपि विप्रत्वं प्राप्तायेपूर्व वद्द्विजाः॥३॥

शूद्रोऽपि शील संपन्नो ब्राह्मणादधिकोभवेत्।
ब्राह्मणो विगताचारः शूद्राद्धीनतरो भवेत्॥ ४॥

अर्थात् "व्यासादि बड़े २ मुनि अपने आचार के कारण से ही कहलाते हैं। नहीं तो वैसे तो वे गर्भाधानादि संस्कारों से तो गिरे ही हुवे थे। व्यास तो कैवर्तिकी

का लड़का था, पराशर चण्डाली का ऋष्यशृंग शिकारनी का, वसिष्ठ वैश्या का, मंदपाल नाविका का। इसी प्रकार से अन्य भी बहुत से ब्राह्मण बन गये हैं—अन्त में पुराण कर्त्ता कहते हैं कि "आचारवान् शूद्र भी ब्राह्मण से बड़ा होता है और आचारहीन ब्राह्मण शूद्र से भी गिरा होता है" ॥

ये सब पुराणों के वचन हैं जिन से स्पष्ट सिद्ध होता कि वर्णव्यवस्था गुण कर्मानुसार होती है। मैं और अन्य पुराणों से बहुत से उदाहरण देसकता हूं किन्तु समय बहुत थोड़ा है और निबन्ध बढ़ता चला जाता है इसलिये मैं उन को यहां नहीं देसकता। यदि कोई इस विषय का विशेष अध्ययन करना चाहता है तो मैं उसे इतनी अनुमति दे सकता हूं कि वह भविष्यपुराण के ४०,४१, और ४२ अध्यायों का अवश्य अनुशीलन करे।

पुराण और तीर्थ

भारतवर्ष में वर्णव्यवस्था के बिगड़े हुवे विचार ने जिस क़दर हानि पहुंचाई है उतनी ही अथवा उस से कहीं और अधिक हानि तीर्थों के बिचार ने फैलाई है। प्राचीन

काल में गङ्गादि नदियों के शीतल तथा सुगन्धिमय शान्त तटों पर योगी लोग समाधि के द्वारा परम भावना को प्राप्त होते हुवे और परोपकार वृत्ति द्वारा दुःख रूपी कीचड में फंसे हुवों को निकालते हुवे अपना जीवन निर्वाह करते थे। इसी लिये इन स्थानों को पवित्र तथा तीर्थ समझा जाता था। क्योंकि यहां पर आये हुवे लोग दुःख रूपी सागर को तर जाते थे। किन्तु आजकल यह बात नहीं रही। आज कल तीर्थों की वड़ी मट्टी पलीत की जाती है। जो स्थान योगियों की शान्ति के लिये ढूंढे गये थे आज वे धूर्त लोगों के लिये उपयुक्त स्थान हो रहें हैं। इस के साथ ही साथ इन स्थानों में इन लोगों द्वारा मुक्ति और दुःखोंपशान्ति के नये से नये और सुगम से सुगम उपायों का आविष्कार हो रहा है। आज वह मुक्ति जिस को कि ऋषि गण वड़ी कठिनताओं के बाद पाते थे आज बड़ी सस्ती हो रही है। आज गङ्गा में एक गोता मारने और पण्डे का पेट भरने मात्र से ही मुक्ति मिल जाती है। किन्तु शोक है। इतने कष्ट उठाये और अपने सारे रुपये खर्च कर दिये परन्तु इन दुःख पिशाचों ने फिर भी पीछा न छोड़ा। फिर भी वहीं दुःख वही शोक और वही हालत बनी रहती है। इस लिये हम इन पुराणों के आधारपर वाह ताना चाहते हैं कि तीर्थों का वास्तविक मतलब क्या

है। पद्मपुराण उत्तर खंड, २३७ अध्याय में दिलीप और वसिष्ठ के संवाद में वसिष्ठ कहते हैं:—

मानसान्यपि तीर्थानि वक्ष्यामि शृणुपार्थिव
येषु सम्यङ्नरः स्नातः प्रयाति परमांगतिम् ॥१॥

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः
सर्वभूत दयातीर्थं तीर्थमार्जव मेवच ॥ २ ॥

ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं नियमस्तीर्थ मुच्यते
मंत्राणां तु जपस्तीर्थं तीर्थन्तु प्रियवादिता ॥३॥

ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थमहिंसा तीर्थमेव च
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं विशुद्धिर्मनसः पुनः ॥ ४ ॥

न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते
स स्नातो यो दमस्नातः शुचिः स्निग्धमनामतः ॥५॥

यो लुब्धः पिशुनः क्रूरो दाम्भिको विषयात्मक
सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापो मलिन एव सः ॥६॥

न शरीरमल त्यागान्नरो भवति निर्मलः
मानसेतु मले त्यक्ते भवत्य त्यन्त निर्मलः ॥७॥

जायन्ते च म्रियन्ते जलेष्वेव जलौकसः
न च गच्छन्ति ते स्वर्गमविशुद्धमनोमलाः ॥ ८ ॥

विषयेष्वति संरागो मानसो मल उच्यते
तेष्वेव हि विरागोऽस्य नैर्मल्यं समुदाहृतम् ॥ ९ ॥

निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्र यत्र वसेन्नरः
तत्रतस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ॥१० ॥

अर्थात् हे राजन् सुनो मैं तुम्हें मानस तीर्थों के विषय में बतलाता हूं । मनुष्य उन्हीं में न्हाकर परमगति को प्राप्त होता हैं । वे कहते हैं "सत्य तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है, इन्द्रियनिग्रह तीर्थ है, दया करना तीर्थ है, नम्रता तीर्थ है, ब्रह्मचर्य्य तीर्थ है, नियम तीर्थ है, जप करना तीर्थ है, प्रिय बोलना तीर्थ है ज्ञान तीर्थ है, धृति तीर्थ है, अहिंसा तीर्थ है, और सब तीर्थों से उत्तम तीर्थ मन की शुद्धि है ? राजन् ! जल में ही स्नान कर लेने से कोई भी मनुष्य शुद्ध नहीं होता है वह मनुष्य शुद्ध होता है जो कि दम रूपी तीर्थ में स्नान कर लेता है"। वे कहते हैं कि "भाई ! जो मनुष्य लोभी होता है, जो चुगलखोर होता है, जो क्रूर होता है जो जालसाज़ होता है, और जो विषयी होता है

वह चाहे एक से लेकर सारे तीर्थों में स्नान कर आवे वह कभी शुद्ध नहीं हो सकता क्योंकि केवल शरीर को साफ करलेने मात्र ही से मनुष्य शुद्ध नहीं हो जाता है किन्तु वह तभी शुद्ध अथवा मुक्त हो सकता है जब कि मन साफ हो जावे नहीं तो सारी जल में रहने वाली मच्छियां एक दम ही स्वर्ग को चली जाया करेंगी। इसी वास्ते मनुष्य को चाहिये कि वह अपने मानस मल को ही दूर करे"

फिर अंत में वे कहते हैं कि "जहां कहीं पर भी जितेंद्रिय ब्रह्मचारी या साधु सन्यासी रहते हैं वहीं पर कुरुक्षेत्र नैमिषारण्य और पुष्कर तीर्थ बन जाता है" इन सब श्लोकों से पता लग जाता है कि पुराण कर्त्ता का तीर्थों के विषय में क्या आशय था और वे किस को तीर्थ मानते थे। अब मैं आप को पुराणों से बतलाता हूं कि हरिद्वार आदियों को तीर्थ क्यों कहा गया था। इस के विषय में पुराण कहते हैं।

भौमानामपि तीर्थानां पुण्यत्वे कारणं शृणु
यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मेध्यतमाः स्मृताः
तथा पृथिव्यामुद्देशाः केचित्पुण्यतमाः स्मृता॥

प्रभावादद्भुताद्भूमेः सलिलस्य च तेजसा
परिग्रहान्मुनीनांच तीर्थानां पुण्यता स्मृता ॥
तस्मात्तीर्थेषु सर्वेषु मानसेषु च नित्यशः
उभयेष्वपि यः स्नाति स याति परमां गतिम् ॥

अर्थात् "हे राजन् ! अब मैं तुम्हें बतलाता हूं कि इन हरिद्वारादि भौम तीर्थों को क्यों श्रेष्ठ माना जाता था सो सुनो। जैसे कि शरीर में कई स्थान उत्तम समझे जाते हैं उसी प्रकार से पृथ्वी में वहां के स्थान और जल के शुद्ध और ओजस्वी होने के कारण वे स्थान भी पवित्र समझे जाते हैं। इस के साथ २ एक और भी कारण और वह यह है कि क्योंकि वहां बड़े निग्रही मुनि रहते हैं इस लिये भी वह स्थान उत्तम समझे जाते हैं"।

ये थे कारण जिन से इन तीर्थों को पवित्र समझा गया था किन्तु अब सभी कुछ उल्ट गया है। जाने दीजिये इधर उधर की बातों को किन्तु मैं तो कहता हूं कि जो पुराणों के इन श्लोकों को एक बार भी ध्यान पूर्वक

पढ़ेगा वह कभी भी यह कहने का साहस नहीं करेगा कि वर्तमान तीर्थ कहाये जाने योग्य हैं। पहिले तो इन तीर्थों पर आबादी ही इतनी हो गई है कि वहां की पृथ्वी में शुद्धता नहीं रह सकती। फिर एक और तमाशा देखिये वह कुण्ड जिस में स्नान किया जाता है मृतों की हड्डियां और लाखों की मैल से इतना अधिक मलिन होता है कि उस में शायद किसी शुद्ध हृदय पुरुष का घूमने को भी दिल न करता होगा। परन्तु क्या किया जाय ये लोग तो पुराणों को भी नहीं देखते कि उन में क्या लिखा है और और भी अधिक अन्धे हुवे २ भेड़ चाल के समान दुःख के गढ़े में गिरते जाते हैं। अवश्य ही इस अन्धपरम्परा को तोड़ने के लिये बड़ा ही प्रतन करना पड़ेगा अस्तु ये सब अवान्तर बातें हैं हमें यहां इन से कुछ मतलब नहीं। अब मैं और दो पुराणों से बताऊंगा कि उन्होंने तीर्थों के विषय में क्या लिखा है।

देवी भागवत पुराण स्कधं ७, अ० ३६, श्लोक १८, ८ में लिखा है—

नाहं तीर्थे न कैलासे वैकुण्ठे वा न कर्हिचित्
वसामि किन्तु मज्ज्ञानि हृदयाम्भोजमध्यमे

किंच—

यत्रैकोऽपि विशुद्धात्मा न भवत्येव मारिष
किं फलं तर्हि तीर्थस्य विषयोपहतात्मसु ॥

कारणं मन एवात्र नान्यद्राजन् विचिन्तय ।
मनःशुद्धिः प्रकर्तव्या सततं शुद्धिमिच्छता ॥

तीर्थ वासी महापापी भवेत्तत्रान्यवञ्चनात्
यथेन्द्रवारुणं पक्वंमिष्टं नैवोपजायते ॥

भावदुष्टस्तथातीर्थे कोटिस्नातो न शुध्यति
मनःरुवंपुतीर्थेषुस्नात्वा स्नात्वा पुनःपुनः ॥

निर्मलंनमनोयावत्तावत्सर्वंनिरर्थकम् ॥

अर्थात् परमात्मा कहते हैं कि—"मैं न तो तीर्थों में रहता हूँ न कैलास पर रहता हूँ न वैकुण्ठ में रहता हूँ और न किसी अन्य स्थान पर ही रहता हूँ मैं तो उसी के हृदय में रहता हूँ जो कि मुझे जानता है" फिर कहते हैं कि "उन तीर्थों का फल ही क्या हुवा जहां एक भी पवित्रात्मा नहीं रहता है । हे राजन् ! तीर्थ वीर्थ का अपना कोई

भी फल नहीं होता, तीर्थ के तीर्थत्व में भी शुद्ध मन वाले मनुष्य ही कारण होते हैं अतएव जैसे तैसे मन को ही शुद्ध करना चाहिये। वह पुरुष जो कि तीर्थों में रहता हुआ भी दूसरों को ठगता रहता है वह महापापी होता है, इस लिए हे राजन् ! मैं कहता हूँ कि पापी मनुष्य का मन शुद्ध नहीं हुआ है तो चाहे सारे तीर्थों में स्नान कर आवे उस के लिये कोई भी गति नहीं है।

इसी प्रकार से ब्रह्मपुराण में भी लिखा है कि—

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुध्यति
शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि ॥

नतीर्थान्निन दानानि न व्रतानि न चाश्रमाः
दुष्टाशयं दम्भरुचिं पुनन्ति व्युत्थितेन्द्रियम्

सावित्री चैव गायत्री श्रद्धा मेधासरस्वती
एतानि पंचतीर्थानि पुण्यानि मुनयो विदुः

कितने ही तीर्थों में कितनी ही बार स्नान करो पर वह मन जिस में कूट २ कर दुष्टता भरी पड़ी है कभी शुद्ध नहीं हो सकता जैसे कि बार बार धोने पर भी शराब

का वर्तन शुद्ध नहीं हुवा करता। दुष्ट, जालसाज़, और अजितेन्द्रिय पुरुष के मन को न तो तीर्थ हा शुद्ध कर सकते हैं न दान शुद्ध करते हैं और न व्रत ही शुद्ध करते हैं। फिर एक जगह कहा है कि "सच्चे तीर्थ" तो सावित्री, गायत्री, श्रद्धा, मेधा और सरस्वती ही हैं—

इस प्रकार से मैं समझता हूं कि मैंने भली प्रकार बता दिया है कि पुराणों में भी स्थान २ पर वर्तमान तीर्थों का तीर्थत्व खण्डित कर दिया गया है।

(३) पुराण और यज्ञों में पशु हिंसा-

सज्जनों! पहिली बातों की तरह यज्ञों की पशु हिंसा ने भी हमारे देश में बड़ा अनर्थ मचाया है। इतिहास हमें बताता है कि यज्ञों की पशु हिंसा बुद्ध भगवान् से भी बहुत पूर्व से चली आ रही है। यज्ञों में पशु वध होता देख कर जब बुद्ध ने ब्राह्मणों से उस का कारण पूछा तो ब्राह्मणों ने कहा कि वेद-स्मृति पुराण ऐसा ही विधान करते हैं। बुद्ध भगवान् तो हिंसा देख ही नहीं सकते थे इस लिए उन्हों ने उस समय के वैदिक-धर्म का खंडन कर के अहिंसा-प्रधान बौद्ध धर्म स्थापित किया। बुद्ध के बाद याज्ञिक काल में वाम मार्गियों ने निःशंक

हो कर पशु मारने प्रारम्भ कर दिए। आज कल भी पौराणिक लोग जहां कहीं यज्ञ करते हैं वहां याज्ञिक पशु हिंसा को पुराणादि शास्त्रों से विहित मान कर पशु मारते हैं। परंतु यदि हम पुराण देखें तो पक्ष में तथा विपक्ष में दोनों प्रकार के ही बहुत से प्रमाण मिलते हैं जिससे कि हम एक ही पक्ष को पुराण सम्मत नहीं ठहरा सकते हैं। अब हम यज्ञों में पशु हिंसा के विरुद्ध कुछ प्रमाण आप के सम्मुख उपस्थित करते हैं। जैसे—

(१) देवी भागवत, ५ स्कंध में व्यास जी प्राचीन-यज्ञ प्रथा को बताते हुए कहते हैं—

यज्ञांस्ते सात्विकै रन्नैः कुर्वाणा धर्मतत्परा।
पुरोडाशविधानैश्च पशुभिर्न कदाचन ॥

अर्थात् प्राचीन समय में लोग धर्म में तत्पर हो कर सात्विक अन्नों तथा पुरोडाशों से यज्ञ करते थे। यहां पर यदि कोई कहे कि अच्छा भाई! अन्न से करते होंगे पर इस से पशु हिंसा का तो निषेध न हुआ तब कहते हैं 'पशुभिर्न कदाचन' अर्थात् यज्ञों में पशु मांस कभी नहीं डालते थे। अब इस से अधिक स्पष्ट और क्या प्रमाण हो सकता है।

(२) इसी पुराण के ७ स्कंध में यज्ञ के लिए हरिश्चन्द्र को शुनः शेप के वध के लिए उद्यत देख कर विश्वामित्र कहते हैं—

राजन् मुञ्च शुनः शेपं रुदन्तं भृशदुःखितम् ।
क्रतुस्ते भविता पूर्णो रोग नाश श्च सर्वथा ॥

दया समं नास्ति पुण्यं पापं हिंसा समं नहि ।
रागिणां रोचनार्थाय नोदनेयं विचारय ।
आत्मदेहस्य रक्षार्थं परदेह निकृन्त नम् ॥

अर्थात् हे हरिश्चन्द्र । शुनः शेप को मत मार । इस के न मारने पर भी तुम्हारा यज्ञ पूर्ण हो जावेगा बताईये ! यदि पशु मारना आवश्यक ही हो तो विश्वामित क्यों कर कह सकते थे कि पशु न मारने पर भी यज्ञ पूर्ण हो जावेगा । फिर कहते हैं कि दया के समान पुण्य नहीं है और हिंसा के समान दूसरा पाप नहीं है । फिर यदि कोई कहे कि पशु हिंसा का भी तो कहीं २ विधान मिलता है ? तो कहते है कि अपने शरीर की रक्षा के लिए दूसरे शरीर का घात करना तो रागी लोगों का का काम है । इस लिए शुनः शेप को मत मारो ।

(३) लीजिए अग्नि पुराण में अध्याय १४६ श्लो० १३, १४ में तो सीधे ही यज्ञ में डालने के सब द्रव्य गिना दिए हैं। जैसे—

सर्व पीड़ादि नाशाय कोटि होमोऽखिलार्थदः।
यवव्रीहि तिलक्षीर घृतकुश प्रसातिकाः।
पंकजो शीर विल्वाम्रदला होमे प्रकीर्त्तिताः।

अर्थात् दुःखों को नाश करने के लिये जितने भी यज्ञ किये जायं उतने ही थोड़े हैं। परन्तु किन पदार्थों से यज्ञ करने चाहियें इस विषय में पुराण कहता है कि जौ-धान-तिल-दूधघी-कुश-विल आदि के पत्ते ही यज्ञ में डालने चाहिये उसी पुराण में अन्य स्थान पर फिर कहा है।

होमस्तिलाद्यैः कार्यस्तु पलाश समिधैस्तथा।
कुण्डेषु होमयेद्वन्हिं समिल्लाज तिलादिभिः॥

अर्थात् यज्ञ में समिधा, खीलें तथा तिलादि पदाथ ही डालने चाहियें। यदि पशुहिंसा का विधान होता और सारे पुराण व्यास जी के हीबनाये होते तो जिस प्रकार

पुराणों में अन्यत्र कहीं २ पशुहिंसा-परक श्लोक मिलते हैं वैसे ही यहां क्यों विधान नहीं मिलता है इस लिये पौराणिकों को एक बात माननी चाहिये या तो यह कि वर्त्तमान पुराण सारे के सारे व्यास जी के बनाये नहीं हैं या फिर यह कि पशुहिंसा ज़रूर ही पुराण प्रतिपादित नहीं है।

(४) वायुपुराण में भी राजा वसु इन्द्र से कहते हैं—

आगमेन भवान् यज्ञं करोतु यदि हेच्छसि।
विधि दृष्टेन यज्ञेन धर्म मव्यय हेतुना॥
यजवीजैः सुरश्रेष्ठ येषु हिंसा न विद्यते।

अर्थात् हे इन्द्र! यदि धर्म की प्राप्ति के लिये यज्ञ करना चाहते हो तो जैसा वेद कहते हैं वैसे करो। फिर वेद की सम्मति बताते हुए कहते हैं कि वेद तो जिन के डालने से हिंसा नहीं होती ऐसे बीज आदि पदार्थों को ही यज्ञ में डालने के लिये कहते हैं। अब बताइये यदि पशुहिंसा पुराण-सम्मत है तो क्या वेद और पुराणों में परस्पर विरोध सिद्ध नहीं होता है? फिर उस विवाद के अन्त में राजा वसु कहता है—"तस्मान्न हिंसा

धर्मस्य द्वार मुक्तं महर्षिभिः।" अर्थात् सब ऋषि महर्षि कहते आये हैं कि हिंसा से धर्म कभी नहीं मिलता हैं इस लिये यज्ञों में पशुहिंसा न करनी चाहिये।

(४) पुराण और स्त्री शिक्षा—

स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में भी पौराणिक लोग बड़ा विरोध करते हैं और कहते हैं कि वेद तथा पुराण स्त्री शिक्षा का निषेध करते हैं। हम पूछते हैं कि यदि ऐसा ही हो तो पुराणों में शिक्षित कन्याओं का वर्णन तथा उन की प्रशंसा क्यों की गई है? इस का स्पष्ट अर्थ यही है कि पुराण लेखक स्त्री शिक्षा को कम से कम बुरा न समझते थे।

(क) देवी भागवत के ६ स्कन्ध में धम एक कन्या से कहता है—

कन्याद्वादशवर्षीया वत्से त्वं वयसाऽधुना।
ज्ञानं ते ह्यस्ति विदुषां ज्ञानिनां योगिनां परम्॥

अर्थात् हे कन्ये। बड़े आश्चर्य की बात है कि १२ वर्ष की अवस्था में ही तुझे इतना ज्ञान हो गया है।

(ख) फिर उसी पुराण में रक्तवीज नाम का एक मनुष्य चामुंडा नाम कन्या से कहता है—

वृद्धाश्च सेविताः पूर्वं नीतिशास्त्रं श्रुतं त्वया ।
पठितं चार्थ विज्ञानं विद्वद्गोष्ठीकृता त्वया ॥

अर्थात् हे चामुन्डे । तूने नीति शास्त्र और अर्थ शास्त्र पढ़ रक्खे हैं । इस से कन्या की विद्वत्ता प्रतीत होती है ।

(ग) मार्कण्डेय पुराणके २६ अध्याय में मदालसा नाम की एक स्त्री ने अरिमर्दन-अलर्क-सुवाहु तथा विक्रान्त नाम के चार पुत्रों को वर्णाश्रम धर्म तथा आत्मज्ञान का बहुत ही उत्तम उपदेश दिया हैं जो कि पढ़ने लायक है यदि स्त्रियां शिक्षित न होतीं तो उपदेश कहां से दे सकतीं तथा पुराण वाले उनका क्यों कर उल्लेख करते ।

(५) पुराण और समुद्र यात्रा ।

पौराणिकों का समुद्र यात्रा से भी स्त्रीशिक्षा आदि की अपेक्षा किसी दर्जे विरोध कम नहीं है। कट्टर पौराणिकों का समुद्र यात्रा से जितना विरोध २०,३० साल पहिले

था उतना ही आज भी है परन्तु भेद इतना ही है कि चूंकि पहिले उन के पक्ष में अधिक मनुष्य थे इस लिये उन की पेश चल जाती थी और आज कल लोगों की आंखें खुल जाने के कारण अब उन की कुछ बन नहीं पड़ती है। यदि पुराण देखें तो हमें स्थान २ पर समुद्र यात्रा का वृत्तान्त मिलता है। जिस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि पुराण लेखक समुद्र यात्रा का विरोध नहीं करना चाहता था।

(क) वराह पुराण में एक पुत्रहीन गोकर्ण नाम के व्यापारी का वर्णन आता है जो कि व्यापार के लिये जहाज़ पर चढ़ कर गया था पर समुद्र में डूब गया था।

(ख) उसी पुराण में एक और स्थान पर एक रत्न ढूंढने वाले व्यापारी का वर्णन मिलता है। जैसे—

पुनस्तत्रैव गमने वणिग् भावे मति र्गता।
समुद्रयाने रत्नानि महास्थूलानि साधुभिः॥
रत्न परीक्षकैः सार्धमानायिष्ये वहूनि च।
एवं निश्चित्य मनसामहासार्थ पुरः सरः॥

समुद्रयायिभिर्लोकैः संविद्धं सूच्य निर्गतः ॥
शुकेन सह सम्प्राप्तो महान्तं लवणार्णवम् ।
पोतारूढैस्ततः सर्वैः पोतवाहै रुपोषिता ॥

अर्थात् एक व्यापारी अच्छे २ रत्न परीक्षकों के साथ जहाज़ पर खूब रत्न लाने की सोच कर चला और चलते २ उन्होंने समुद्र के अन्दर ही रात बिताई इत्यादि। इस से स्पष्ट है कि समुद्र यात्रा के साथ पुराण लेखक का कोई विरोध नहीं था।

सज्जनों ! यहां तक मैंने केवल ३- या ४ विषयों के सम्बन्ध में पुराणों की सम्मति का दिग्-दर्शन मात्र किया है। इन में से एक भी विषय को लेकर विस्तार से अलोचना करने के लिये बहुत परिश्रम तथा समय चाहिये। परन्तु फिर भी मैं समझता हूं कि जितने विषयों पर मैंने कुछ आलोचना की है वह मेरे साध्य का सिद्ध करने में पर्य्याप्त है। इतने से आप ने जान लिया होगा कि वर्त्तमान समय के प्रचलित पौराणिक सिद्धान्तों से पुराणों के वास्तविक सिद्धान्त कितने विरुद्ध हैं। मैंने जो कुछ भी प्रमाण यहां दिए है उन में से

किसी भी प्रमाण का अनुकूल प्रकरण के होने के कारण तथा भाषा के भी सुगम होने के कारण पंडितों की प्रसिद्ध जोड़ तोड़ की रीति से कोई भिन्न अर्थ नहीं किया जा सक्ता है। इस लिये मेरी समझ में तो वर्त्तमान पौराणिकों के सिद्धान्तों के विरुद्ध पुराणों में बातें मिलती हैं।

अच्छा यदि कोई कहे कि नहीं भाई ? पौराणिकों के अनुकूल भी तो पुराणों में मिलता है। इस का उत्तर यह है कि एक तो ऐसा मानने से पुराणों में परस्पर विरुद्ध कहने के कारण "वदतोव्याघात" दोष आता है। और परस्पर विरुद्ध जिस ने कहा हो वह पुस्तक भी प्रमाणिक नहीं हो सक्ती है। और दूसरी बात यह है कि यदि पौराणिक लोग पुराणों को इस लिये प्रामाणिक मानते हैं कि पुराणों में उन के अनुकूल प्रमाण मिलते हैं तो हम पूछते हैं कि उन से उलटी बातें जो मिलती हैं उन का उन के पास क्या समाधान है। और यदि नहीं है तो एक ओर का प्रमाण मानना कोई ठीक बात नहीं है। मैंने श्री० वैंकटेश्वर छापेखाने के छपे हुए पुराण देखे हैं उन की भूमिका में पौराणिक पंडितों ने पुराणों के विरोध हटाने की एक सरल

युक्ति निकाली है। वह यह है कि स्वामी दयानन्द और आर्य्यसमाजियों पर खूब गालियों की बौछाड़ की जाए तो विरोध हट जाता है। इसी सीधे उपाय से वे लोग सारा का सारा विरोध आन की आन में हटा देते हैं। सच मुच वे अभिनन्दन के लायक हैं कि उन्हों ने विरोध परिहार का एक बड़ा ही सरल उपाय निकाला है।

सज्जनो ? मैतो समझता हूं कि यदि किसी तरह से सारे पौराणिक अपने आप एकवार भी पुराण पढ़लें तो बहुत सी परस्पर विरोधकी अग्नि शान्त होजावे। सारी तंगी यही है कि पौराणिक स्त्री और पुरुष अशिक्षित होने के कारण अपने आप पुराण नहीं पढ़ सकते हैं परंतु उन की धर्मतथा धर्म शास्त्रों में श्रद्धा बड़ी होती हैं। इसलिये स्वार्थी लोगों के मुख से वे भोले लोग जो कुछ भी सुनते हैं उसी पर विश्वास कर के तदनुकूल आचरण करने लग जाते हैं। मेरे विचार में सारे विरोध का यही कारण हैं। यदि कमसेकम पौराणिक लोग हिन्दी भाषा में ही पुराण पढ़डालें तो बहुत सा विरोध हटसकता है। यह हाल केवल पौराणिकों का ही नहीं हैं प्रत्युत सब मतों के अनुयायिओं का है।

अथवा पुराण पढ़ने की भी क्या जरूरत है प्रकाश के आनेपर अन्धकार स्वयमेव नष्ट होजाता हैं उसके हटाने में किसी और वस्तु की आवश्कता नहीं होती है। इसी प्रकार से आप शिक्षा का प्रचार कीजिये। जैसे २ शिक्षा का प्रचार होता जावेगा वैसे ही वैसे विना किसी यत्न के अविद्या पिशाची आपही भारत वर्ष से भाग ती जावेगी। १६ वीं शताब्दी से पूर्व योरुप में भी वैसे ही मत भेद थे जैसे आज भारतवर्ष में दृष्टि गोचर होते है वहां के बुद्धिमान लोगों ने समझा कि भिन्न२ मत अज्ञान के ही भिन्न २ रूप हैं। इस लिये अज्ञान रूपी जड़के काटने पर सारा बृक्ष आपही गिरजावेगा। तदनुसार योरुप में साईन्स का प्रचार किया गया उसका फल आज हम यह देखते हैं कि वहां ४ शताब्दियों के अन्दर ही बहुत से अन्ध विश्वास तथा मत भेद दूर होगए हैं और लोग केवल साईंस अथवा सत्य ज्ञान के ही श्रद्धालु हागए हैं।

हर्ष की बात है कि हमारे भारत वर्ष में भी अब कुछ शिक्षा की झलक दीखने लगी है। अब चाहे लोग पुराणों

में विश्वास करें या न करें इससे कुछ नहीं विगड़ेगा।

जो पौराणिक वीस पच्चीस साल पहिले स्त्रीशिक्षा के विषय में आर्य्यसमाजियों का घोर विरोध करते थे, हम देखते हैं कि आज वही लोग शहर शहर तथा गांव गांव में अपने आप कन्यापाठशालाऐं खोल रहे हैं।

पौराणिकों का समुद्रयात्रा का विरोध भी कोई आप से छिपा नहीं है। काशी में शिवकुमार शास्त्री जी ने भी समुद्रयात्रा के विरोध में अपना निर्णय दिया। कलकत्ते में भी पंडितों की भरी सभा ने इस का विरोध किया पर मैं पूछता हूं कि क्या लोगों ने विदेश जाना छोड़ दिया ? बिलकुल नहीं। उलटे पहिले तो बहुत से लोग पञ्चगव्य खाने के भय से विदेश में नहीं जाते थे। परन्तु आज तो बहुत से पौराणिक ही निःशंक हो कर अमेरिका और इङ्गलैंड जाते हैं। और जब वहां से लौटते हैं तो किसी की हिम्मत नहीं होती कि उन को विरादरी से बाहर कर सके इस प्रकार

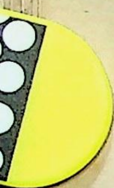
यह जो वर्तमान समय में नई जागृति की झलक दीख रही है इसी से हमें आशा होती है कि भारत के उन्नति के दिन आगये हैं।

अन्त में मेरा केवल यही निवेदन है कि:—

विभव सब हमारा जिस ने धो कर बहाया।
नयन सलिलधारासार सूखे वोसारा॥
कलुष सब दिलों का दूर हो, श्याम छाया—
फिर वह मीठी हो, फिर बहे स्नेह-धारा॥

इति शम्







पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है इस तिथि सहित १५ वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५ नये पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

30 MAR 1966

